International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

प्राचीन भारत में आयुर्वेद विज्ञान का विकास

डा. गरिमा भारती

सहायक आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्व विद्यालय, लखनऊ

Abstract

'आयुर्वेद' न केवल एक चिकित्सा पद्धति है बल्कि यह एक विज्ञान भी है। शरीर, इंद्रिय, मन एवं आत्मा इन चारों के संयोग को 'आयु' माना जाता है एवं इन चारों का ज्ञान ही आयुर्वेद है। एक प्रकार से आयु के संपूर्ण विश्लेषण का अध्ययन जिस विधा के अन्तर्गत किया जाता है उसे 'आयुर्वेद विज्ञान' की संज्ञा दी जाती है। इसी दृष्टि से आत्मा और मन सम्बन्धी ज्ञान एक प्रकार से प्राचीन मत में आयुर्वेद ही है। चरक संहिता के सूत्र स्थान में आयुर्वेद शब्द की व्याख्या करते हुए चरक ने कहा है कि जो आयुष्य का ज्ञान कराता है, वह आयुर्वेद है।

ऐसा माना जाता है कि आयुर्वेद के प्रदेष्टा ब्रह्मा थे। ब्रह्मा ने सर्वप्रथम अपनी इस 'आयुर्वेद' विद्या को दक्ष प्रजाप्रति को प्रदान किया। दक्ष प्रजापति से ही अश्विनी कुमारों ने क्षीर सागर स्थित चन्द्र पर्वत पर उत्तम प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न करने का ज्ञान प्राप्त किया। पौराणिक ग्रंथों के अनुसार च्यवन ऋषि को अश्विनी कुमारों ने अपनी अद्‌भुत आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति द्वारा वृद्धावस्था से पुनः यौवन प्रदान कराया था। अश्विनी कुमारों ने देवराज इन्द्र को आयुर्वेद का ज्ञान प्रदान किया। तत्पश्चात् इन्द्र ने आयुर्वेद का ज्ञान भारद्वाज, महर्षि भृगु, अंगिरस, अत्रि, कश्यप, वशिष्ठ, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, गौतम आदि दस महापुरुषों को प्रदान किया। इन्द्र से प्राप्त आयुर्वेदिक ज्ञान को ही ऋषि भारद्वाज ने 'तन्त्र ग्रन्थ' के रूप में आबद्ध किया था। ऋषि भारद्वाज के एक शिष्य द्वितीय धन्वन्तरि थे। मुण्डकोपनिषद में आयुर्वेद को ऋगवेद का उपवेद बताया गया है जिसके उपदेष्टा धनवन्तरि को माना गया है। पुराणो के अनुसार धन्वंतरि ने ही आयुर्वेद-आगम को आठ अंगों में विभक्त किया, जिसे 'आयुर्वेद अष्टांग' कहा गया। आयुर्वेद अष्टांग एक प्रकार से चिकित्सा पद्धति है। आयुर्वेद के अष्टांग निम्नलिखित है - शल्य, शलाक्य, काय, भूत, कौमार्यभृत्य, अगदतंत्र, रसायन, बाजीकरण।शल्य -आयुर्वेद के आठ अंगों में यह अंग सबसे प्रधान है। विविध प्रकार के शल्यों को निकालने की विधि एवं अग्नि, क्षार, यंत्र, शस्त्र आदि के प्रयोग द्वारा संपादित चिकित्सा को शल्य चिकित्सा कहते हैं। शालाक्य -गले के ऊपर के अंगों की चिकित्सा में बहुधा 'शलाका' सदृश यंत्रों एवं शस्त्रों का प्रयोग होने से इसे शालाक्यतंत्र कहते हैं। इसे 'ऊध्वाङ्गचिकित्सा' भी कहते हैं। ऊध्वजत्रुगत आँख, मुख, कान, नासिका आदि में रोगों की, शलाका आदि द्वारा की जाने वाली चिकित्सा ही से यह संबंधित है। काय चिकित्सा-इसमें सामान्य रूप से औषधिप्रयोग द्वारा चिकित्सा की जाती है। भूत विद्या –इसे ग्रहचिकित्सा भी कहते हैं इसमें देवाधि ग्रहों द्वारा उत्पन्न हुए

विकारों और उसकी चिकित्सा का वर्णन है। कौमारभृत्य -बालकों के भरण पोषण धात्री की चिकित्सा आदि का विधान जिसमें वर्णित हो, उसे कौमारभृत्य कहते हैं। अगदतन्त्रः- इसमें विभिन्न स्थावर, जंगम और कृत्रिम विषों एवं उनके लक्षणों तथा चिकित्सा का वर्णन है। इसे 'दंष्ट्राविषचिकित्सा' भी कहते हैं। रसायन- आयुष्य बल और ओज की वृद्धि के लिये तथा व्याधि समुदाय को दूर करने के लिये जिसमें उपाय बताया गया हो, वह 'रसायन' है। वाजीकरण - क्षीण वीर्य की दूर करने, शुकशोधन, वृद्धावस्था दूर करने का जिसमें वर्णन किया गया हो, वह वाजीकरण है।

यदि आयुर्वेद के उत्पत्ति एवं विकास पर प्रकाश डाले तो स्पष्ट होता है कि भारत के उत्तर-पश्चिम भाग में सिन्धु सभ्यता के लोग चिकित्सा में औषधियों का प्रयोग करते रहें होंगे। इसके नगर में शिलाजीत के प्रमाण मिले है। जिसका उपयोग आज भी बल बढ़ाने के लिए होता है। इसके अतिरिक्त वहाँ से प्राप्त हिरण, बारहसिंहा, चीतल, सांभर के सींगो का साक्ष्य से प्रमाण मिलता है कि इनका वे चूर्ण बनाकर कुछ रोगों का समाधान करते थे। रोगियों की चिकित्सा के लिए औषधियों के अतिरिक्त ताबीजों का भी प्रयोग उस समय होता था। कालीबंगा स्थल से प्राप्त एक बच्चे की खोपड़ी में छेद करके उसे लेप से भरा गया है, इसी प्रकार लोथल स्थल से एक मानव खोपड़ी पर छेद के निशान शल्य क्रिया के प्रमाण प्रस्तुत करते है।

वैदिक काल में आयुर्वेद के स्पष्ट प्रमाण लिखित रूप में प्राप्त होने लगते है। ऋगवेद के दशम मंडल के १३७वाँ सूक्त तथा अथर्ववेद के चतुर्थ खण्ड का तेरहवां सूक्त 'रोग निवारण मंत्रो' से संबंधित है जिसमें रोगों से मुक्ति हेतु विश्व देवताओ से प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद के दशम मण्डल का ६७ वां सूक्त को भिष्क सूक्त या औषधि सूक्त कहा जाता है। जिसमें औषधियों द्वारा शरीर के रोग मुक्त करने का उल्लेख किया गया है। इसमें औषधियों को माता समान माना गया है एवं कहा गया है कि, "हे माताओं! तुम्हारी शक्तियाँ असंख्य है एवं तुम्हारी बुद्धि भी सहस्र प्रकारों की है। हे सामर्थ्य धारण करने वाली औषधियों तुम मेरे इस रूग्ण शरीर को रोग मुक्त करों। ' हे औषधियों ! तुम आपत्ति को दूर करने वाली हो। मै तुम्हारें पास इस प्रकार याचना करता हूँ कि अश्व, गाय तथा वस्त्र मुझे मिले और रोगों से मुक्ति मिल जाय। हे औषधियो तुम्हारा विश्राम स्थान अश्वत्वृक्ष पर है और यदि तुम इस पीडित पुरूष कों व्याधियों के पास से छुड़ा देती हो तो तुम्हें पुरस्कार के रूप में अनेक गायों की प्राप्ति होगी।" इससे स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद काल में मानव रोग से मुक्त होने के लिये एक प्रकार से प्राकृतिक तत्वों पर निर्भर था। औषधि के रूप में वृक्षों, लताओं वनस्पतियों जडी-बूटियों का उपयोग किया जाता था। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल से यह प्रमाण मिलता है कि अश्विनी कुमारों द्वारा औषधियों के प्रयोग से च्यवन ऋषि को वृद्ध से युवा बनाया गया। ऋगवेद के १६२वें सूक्त से प्रजनन संबंधी समस्याओं एवं उनके निदान पर चर्चा की गयी है।ऋग्वेद में चिकित्सा हेतु देवताओं के स्तुति पर बल दिया गया है। वैदिक मंत्रों में मरूत, अग्नि, सूर्य, अप को औषधि देवता माना गया है। जल से आरोग्य की कामना की गई है।जल को मुख्य औषधि माना गया है। 'जल चिकित्सा' का विकास जल के औषधीय गुणों के कारण ही हुआ। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में सूर्य की किरणों द्वारा की जाने वाली चिकित्सा का उल्लेख आता है, जिसे 'सौर चिकित्सा' कहते है।अथर्ववेद में सूर्य से आरोग्य के विषय में उल्लेख मिलता है। उपनिषदों में सूर्य को प्राण माना गया है। ऋग्वेद में 'वायु चिकित्सा' का भी उल्लेख मिलता है। एक मंत्र में वायु के विषय में इस प्रकार का उद्धरण है कि 'हे वायुः अपनी भैषज्य ले

आओ और यहाँ से सब दोष दूर करो क्योंकि तुम ही सब औषधियों से युक्त हो। इसी प्रकार से ऋग्वेद में न केवल औषधियो के प्रयोग द्वारा काय चिकित्सा का उल्लेख मिलता है बल्कि शल्य चिकित्सा का भी उल्लेख है। शल्य चिकित्सा का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण विश्पला नामक स्त्री का मिलता जिसके कटे हुए पैरो को अश्विनी कुमारों ने लोहे की पैर लगा कर सही किया। इसी संदर्भ में कक्षीवान ऋषि कहते है कि 'हे अश्विन कुमारों! तुम्हारे अति दुशाध्य शल्य का वर्णन मैं इस प्रकार कर रहा हूँ। तुमनें शल्य कर्म द्वारा दध्यांग ऋषि के सिर को काट कर घोड़े का सिर उनके सिर से जोड दिया था और उसके अश्व मुख से दध्यंग ऋषि द्वारा मधु विद्या का उपदेश आपने स्वयं ग्रहण किया था। पुनः देवराज इन्द्र ने जब वज्र से ऋषि के अश्व सिर काट दिया तो आपने उनके सुरक्षित मानव सिर को पुनः शल्य क्रिया से कटे हुए धड़ से जोड दिया।ऋग्वेद में शल्य क्रिया के संबंध में विशेष प्रसंग है। एक प्रसंग में इंद्र द्वारा अत्रि के खलित्य रोग एवं उनकी पुत्री अपाला के चर्मरोग एवं कुष्ठ रोगों के शल्य चिकित्सा उल्लेखनीय है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋग्वेद में काय चिकित्सा एवं शल्य चिकित्सा के मूल बीज अत्यंत सूक्ष्म एवं उत्कृष्ट रूप में सन्निहित है।यजुर्वेद में भी अनेक जीवनदायिनी औषधियों का भी उल्लेख आया है।अथर्ववेद को भी भारतीय चिकित्सा पद्धति का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें दान, स्वस्ति, बलि, मंगल, होम नियम, प्रायश्चित, उपवास, मंत्र आदि द्वारा चिकित्सा का वर्णन है। रोगोत्पत्ति का कारण वेदों में वात, पित, कफ को माना गया है। अथर्ववेद में पिप्पली तथा विषाणिका नामक वनस्पतियों को वात रोग नाशक औषधि कहा गया है। अथर्ववेद के अष्टम मंण्डल में संक्रामक रोग जीवाणु एवं मलेरिया रोग फेलाने वाले मच्छरों के औषधियों के द्वारा विनष्ट करने के साक्ष्य मिलते है । अथर्ववेद में शरीर रचना के संदर्भ में विविध अंगों, उनमे होने वाले रोगों और साथ ही उनके उपचार का वर्णन मिलता है। रोगों में ज्वर, अपचित रोग, राजयक्ष्मा रोग- क्षय रोग (टी०बी०), किलास या श्वेत कुष्ठ रोग, जलोदर रोग, हृदय रोग आदि का उल्लेख मिलता है। राजयक्ष्मा (क्षय) रोग शब्द ऋग्वेद में भीआया है। यजुर्वेद संहिताओं में यक्षमा रोग के तीन प्रकार बताए गए है; राजयक्ष्मा, पापयक्ष्मा और जायान्यक्ष्मा। वेदों में अश्विन का वर्णन मिलता है 'अश्विन' एक उपाधि थी, जो कि काय-चिकित्सा और शल्य चिकित्सा दोनों में दक्ष चिकित्सक को प्रदान की जाती थी। जिस प्रकार की घोड़ों की चिकित्सा करने वाले व्यक्ति को 'शालिहोत्र' कहा जाता था।अश्विन मुख्यतः देवताओं के चिकित्सक थे। आयुर्वेद परम्परा में अश्विन ने प्रजापति से आयुर्वेद सीखा और अश्विन से इन्द्र ने सीखा।देवताओं में ब्रह्मा, प्रजापति अथवा इन्द्र किसी ने भी चिकित्सा कर्म नही किया, इस कार्य को केवल अश्विनौ ने ही किया।

वेदोत्तर काल के साक्ष्यों में बौद्ध पालि ग्रन्थ, त्रिपटक, जातक, महावग्ग एवं पाणिनि की अष्टाधायी प्रमुख हैं। पाणिनी ने छूत की बीमारी को स्पर्श रोग कहा है। पाणिनी ने अष्टाध्यायी में वैद्य के लिये "अगदंकार" शब्द का प्रयोग किया है, जडी बूटी को औषधि तथा तैयार की गई दवा को औषध कहा है और द्वितीय एवं चतुर्थक ज्वर को 'काल प्रयोजनाद रोग' कहा है। जो व्यक्ति रोग से मुक्ति पा जाता था परंतु निर्बल रहता था,उसको उन्होंने 'ग्लास्नु' की संज्ञा दी। अष्टाध्यायी में उल्लिखित त्रिदोष के अन्तर्गत कात्यायन ने वात, पित्त और कफ को सम्मिलित किया है। विनय पिटक में स्वास्थ्य एवं चिकित्सा संबंधी निम्न जानकारी प्राप्त होती है जैसे स्वेद कर्म, रक्तमोक्षण, पाण्डुरोग, भगन्दर । इस काल में वैद्य जीवक का चिकित्सा में विशेष

योगदान स्पष्ट होता है । जीवक राजगृह में रहने वाली एक वेश्या का पुत्र था। उसने आयुर्विज्ञान का गहन अध्ययन तक्षशिला विश्वविद्यालय में किया था। इस संस्थान में १८ विषय सिखाये जाते थे। जिनमें आयुर्विज्ञान भी सम्मिलित था। जीवक के द्वारा किए गए उपचारों के विषय में अनेक साहित्यिक साक्ष्य प्राप्त होते है। जैसे मगध नरेश बिंबसार के भगन्दर रोग का उपचार करना, राजगृह के एक श्रेष्ठी के सात वर्षो से भंयकर सिरदर्द का उपचार, बनारस के एक श्रेष्ठी के बेटे का पाचन तंत्र का उपचार, अवंति नरेश चण्डप्रध्योत के पाण्डु रोग का उपचार, साकेत के एक व्यापारी की पत्नी सात वर्षों से सिर दर्द का उपचार। सिव जातक के अनुसार शल्य क्रिया के द्वारा एक व्यक्ति आंखों को निकाल कर दूसरे व्यक्ति में आरोपित कर दिया गया था।

मौर्य काल में कौटिल्य के अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज की इण्डिका एवं अशोक के अभिलेखों से तत्कालीन चिकित्सा के संबंध जानकारी मिलती है। अर्थशास्त्र में 'विषकन्या' का उल्लेख महत्वपूर्ण है। जिसमें निषेधात्मक आयुर्वेदिक औषधियों की एक निश्चित मात्रा कन्या को जन्म से दी जाती थी जिससे विपत्ति के समय शत्रु को नष्ट में इनका उपयोग किया जाता था। मेगस्थनीज बताता है कि वे भारतीय अपने शास्त्र के बल पर अनेक संतान उत्पन्न करा सकते हैं, तथा दवाइयों के माध्यम से इच्छानुसार नर तथा मादा बच्चे पैदा कर सकते हैं। भारतीय वैद्यों द्वारा बनाये गये लेप सुप्रसिद्ध हैं। पशुओं चिकित्सक को अर्थशास्त्र में 'अनिकस्थ' कहा गया है जबकि जो मानव की चिकित्सा करते थे, उन्हे' चिकित्सक' कहा गया है। कौटिल्य ने भोजन परीक्षण में विष परीक्षा का भी विधान बताया है।कौटिल्य ने विष विद्या के जानने वाले व्यक्ति को 'जांगली वैद्य' नाम दिया है।अर्थशास्त्र में अनेक जड़ी-बूटियों एवं धातुओं की सूचना भी मिलती हैं जिनका उपयोग औषधि के रूप में होता था जैसे- चन्दन, बांस, सागौन, तिमिस, धनुवन, तिलक, मधुप, सिरीस, खदिर, आम, प्रियक, सोना, चांदी कालकूट वस्तनाभि, हलाहल, मेषश्रृंगी,महाविष, गौराद्रि आदि। विषों का भी उल्लेख आयुर्वेद के अनेक स्थानों पर मिलता हैं अर्थशास्त्र में 'आशु मृतक परीक्षा' का उल्लेख हुआ है। जिसमें मृत शरीर की परीक्षण, उसकी मृत्यु का कारण तथा शव को सुरक्षित रखने के उपाय भी बताये गये हैं। आशु मृतक के शरीर को तेल में डाल कर उसे लंबे समय तक सुरक्षित किया जा सकता था।

मौर्यवंश के शासक अशोक ने मानव एवं पशु चिकित्सा हेतु अनेक कार्य किए। अशोक के अभिलेखो से उसके द्वारा मनुष्यों एवं पशुओं की चिकित्सा संबंधी उपायों की जानकारी मिलती है। चिकित्सा का प्रबंध वह दक्षिण भारतीय राज्यों चोल, पाण्ड्य, सतियपुत्र, केरल पुत्र और ताम्रपर्णी तथा यवन राज्यों में करता है। इसकी सूचना दूसरे तथा तेरहवें शिलालेख से भी मिलती है।पशु चिकित्सा कौटिल्य ने हाथियों के विषय में लिखा है कि जहाँ अधिक गर्मी हो वहाँ पर हाथियों को नहीं ले जाना चाहिये, क्योंकि वहाँ पर इनका पसीना बाहर न निकलने से इनको कुष्ट रोग हो जायेगा

मौर्योत्तर काल विशेषकर कुषाण काल में चिकित्सा पद्धति ज्ञान अविस्मरणीय है। इस काल में चरक जैसे महान चिकित्सक हुए, जो कनिष्क के विद्वत मण्डली में अग्रणी थे। चिकित्सा के क्षेत्र में चरक द्वारा रचित चरक संहिता बहुत बड़ा योगदान रहा है।चरक संहिता में आठ् अध्याय हैं जिसे स्थान कहा गया है। सूत्र स्थान में औषधि पथ्य, वैद्य के कर्तव्य आदि के विषय में बताया गया है। निदान-स्थान में ज्वर रक्तस्त्राव कुष्ठ, क्षय आदि का विवेचन है। विमान-स्थान में रोगों के परीक्षण और

उनके योग्य औषधि की जानकारी प्राप्त होती है। इन्द्रिय स्थान में इन्द्रियों की विकृति का विवेचन और वाणी-सम्बन्धी विकार तथाशक्ति क्षय आदि का उल्लेख है। चिकित्सा-स्थान में रोगों का निदान स्वास्थ्य-वृद्धि और दीर्घ जीवन के उपाय वातरोग और ज्वर आदि का विश्लेषण है। कल्पस्थान में शरीर शोधन द्वारा रोगों के निवारण का वर्णन है। सिद्धि स्थान में विषम रोगों की चिन्ता के लिए औषधि के शरीर में प्रवेश करने की व्याख्या है। चरक ने पेट की चीर फाड़ का तो उल्लेख किया है, पर सिर का चीर फाड़ का नहीं। चरक औषधीय विद्या में पारंगत थे। चरक निदान स्थान में ज्वर का विवरण है। चरक के अनुसार ज्वर शरीर तथा मन को संताप देता है, और शरीर एवं मन की सामान्य स्थिति को विकृति कर देता है। ईसा काल के बौद्ध ग्रंथों ललितविस्तर, सौंदरानंद, सद्धर्म पुण्डरीक में विशेष रोगों की सूची मिलती है जैसे वातरोग, पित्तरोग, श्लेष्म, सन्निपात, चक्षुरोग, कर्णरोग, घ्राणरोग, जिव्हारोग, ओष्ठरोग, दन्तरोग, काष्ठरोग, गलण्डरोग, उरगण्ड, कुष्ठ, किलासशोष, उन्माद, आपस्मार, ज्वर, गलगण्ड, पिटक, विसर्प, विचर्चिक, दाहज्वर, कायरोग, पितपांडु, कुष्ठरोग, वातातप, मुखरोग, पाण्डुरोग, क्षय आदि एवं केवल रोगों के नाम ही नही दिये गये हैं, उनके उत्पन्न होने के कारण और उपचार औषधियों का वर्णन भी दिया गया है। इनमे रोगों को 4 भागों में बांटा गया है- वातिका, पैत्तिका, श्लेष्मिक, और सन्निपातिका एवं यह भी बताया गया है कि रोग त्रिदोषों- वात, पित्त और कफ के कारण उत्पन्न होते थे। ललितविस्तर में बुद्ध को महावैद्य कहा गया है जो पृथ्वी पर मानव को विभिन्न रोगो एवं व्याधियों से मुक्त करने के लिये घूमते हैं। सद्धर्म पुण्डरीक से ज्ञात होता है कि औषधियां दांत से चबाकर, पीसकर, अन्य द्रव्यों में मिलाकर और पकाकर, आम्र रस में मिलाकर, शलाका द्वारा शरीर में बेधकर दूसरी दवा को प्रवेश कराकर, अग्नि मे पकाकर, अन्य द्रव्यों में मिलाकर, कुछ भोजन तथा पानी में मिलाकर प्रयोग की जाती थी। इस काल में आयुर्वेदाचार्य को अनेक नामों से संबोधित किया जाता था जैसे- वैद्य, शल्यहर्ता, चिकित्सक, महावैद्यराज, भूतचिकित्सक, महाशल्यहर्ता, लोक-वैद्य, महावैद्य और सर्वरोग चिकित्सक।

गुप्तकालीन आयुर्वेद के विषय में वाग्भट्ट के अष्टांग संग्रह नामक ग्रन्थ से महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। इस ग्रन्थ में शारीरिक चिकित्सा और शल्य-कर्म को लेकर अनेक नवीन जानकारी मिलती है। गुप्त-युग में वृक्ष-सम्बन्धी आयुर्वेद तथा पशु-चिकित्सा की अभूतपूर्व उन्नति हुई है। वराहमिहिर की वृहत्-संहिता में वृक्ष-चिकित्सा का उल्लेख मिलता है। पालकाप्य ने 'हस्त्यायुर्वेद' की रचना की इस ग्रन्थ में हाथियों के रोगों के परीक्षण एवं चिकित्सा विषयक पर विस्तृत चर्चा हैं। इस काल में शल्य-चिकित्सा का बहुत अधिक विकास हुआ। जिसमें सुश्रुत का विशेष योगदान है। इनके द्वारा लिखित सुश्रुत संहिता भारतीय शल्य चिकित्सा का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। पौराणिक विवरण के अनुसार भारत में शल्य चिकित्सा करने वाला पहला व्यक्ति भिषगर्थवन् था। ऋग्वेद में एक स्थान पर विवरण आता है कि विश्पला की टूटी टांग को काटकर अश्विन देवताओं ने उसके स्थान पर लोहे की टांग लगा दी।साहित्यकार विवरणों में सुश्रुत ने ही प्रथम बार शल्य कर्मो की सारी आवश्यकताओं, शल्य अनुभवों तथा इससे संबंधित अन्य आवश्यक जानकारियों को लिपिबद्ध करने का कार्य किया। उन्होंने वेदों की विवरण शैली से हटकर शल्य चिकित्सा को स्वतंत्र एवं वैज्ञानिक आधार दिया । उन्होंने संपूर्ण जीवन शल्य चिकित्सा को अर्पित कर दिया था। इन्होंने शल्य क्रियाओं को आठ भागो में बांटा तथा इन्हे तीन समूहों के अन्तर्गत रखा- आहार्य (ठोस देह को निकालना)

भेद (छेदना) और विसात्य (द्रव्य निकालना)। सुश्रुत ने शल्य क्रिया में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। सुश्रुत ने सर्वप्रथम कटे हुए कान को ग्रीवा के पास के खाल को निकाल कर उपचारित करने की क्रिया का उल्लेख किया है। सुश्रुत को ही मोतियाबिन्द के सफल आपरेशन का अविष्कार करने का भी श्रेय दिया जाता है। सुश्रुत ने सुश्रुत संहिता के चिकित्सा स्थान (अध्याय) दो में निम्नलिखित उपचारों पर प्रकाश डाला है जैसे- पेट का आपरेशन, टूटी हड्डियो को बैठाया जाना, हार्निया तथा फटन उपचार, बवासीर तथा भंगदर का उपचार, आंतों के चोटिल हो जाने पर उपचार, पथरी का सफलतापूर्वक उपचार आदि के बारे में सूचना हमें सुश्रुत संहिता से मिलती है। मानव शरीर में कितनी हड्डिया है। इसकी संख्या भी सुश्रुत बताते हैं। परंतु यह संख्या वैदिक परंपरा मे मानी गयी हड्डियों की संख्या से भिन्न है वैदिक परम्परा में ३६० हड्डियों की सूचना है परंतु सुश्रुत इसे ३०० ही बताते है। सुश्रुत के द्वारा बताए गए शल्य यंत्रों की संख्या १०१ बतायी गई है, जिसमें हाथ को सर्वप्रमुख माना गया है। क्योंकि इसकी सहायता बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता। सुश्रुत ने शल्य यन्त्रों को निम्न वर्गों में बांटा गया है- स्वातिक, संदंभ, ताल, नाडी यंत्र और शलाका इनके उपयंत्र भी होते है। सुश्रुत के अनुसार इन यंत्रों को न तो बहुत बड़ा और न ही बहुत छोटा होना चाहिये। इसका उल्लेख सुश्रुत संहिता के 'सूत्रस्थान (अध्याय' ७) से मिलती है। सुश्रुत शल्य यंत्र के बारे में प्रमुख जानकारी देते है की शल्य यंत्रों को क्षार, तेल में रखना चाहिये, जिससे इन यंत्रों की धार तथा कार्यक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। सुश्रुत ने निम्नलिखित उपयंत्रों का भी उल्लेख किया है जैसे- बांस की चपटी, मणि या कांच का टुकडा आदि। इन यंत्रों का कहीं प्रमुख और कहीं सामान्य रूप में प्रयोग किया जाता था। सुश्रुत यह भी स्पष्ट करते है कि शस्त्र को इतना तेज होना चाहिये कि वह बाल को भी आसानी से दो हिस्सों को काट सकें।

इस प्रकार स्पष्ट होता है आयुर्वेदिक विद्या, जिसका वर्तमान जीवन में महत्वपूर्ण योगदान है अत्यंत प्राचीन काल से ही प्रचलित रही है। काय चिकित्सा एवं शल्य चिकित्सा इन दोनों ही विधाओ की उत्पत्ति एवं विकास का उल्लेख वैदिक कालीन ग्रन्थो से ही मिलने लगता है। कोई भी रोग जिससे वर्तमान मानव अत्यधिक रूप से ग्रसित है जैसे :- मोतियाबिंद, पथरी, पीलिया, ज्वर इन सबका उल्लेख एवं उपचार प्राचीन ग्रंथो में मिलता है अर्थात् विश्वव्यापी आयुर्वेदिक विधा का स्रोत भारतीय इतिहास में देखा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गोविन्द प्रकाश- अथर्ववेद, गंगा बुक डिपो, मथुरा, 1969
2. गैरोला श्रीवाचस्पति- कौटिल्य का अर्थशास्त्र, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1962
3. गुप्ता डा० भगवत्त राम- आयुर्वेद का प्रमाणिक इतिहास- चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1968
4. दामोदर धर्मानन्द कौशाम्बी- प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1962
5. निरलेकर पुरूषोत्तम- आयुर्वेद औषधि विज्ञानम्, सरस्वती मुद्रणालय, अमरावती, 1942